शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir जनवरी २०१८, संस्करण २४

इच्छाएँ कभी समाप्त नहीं होती हैं परन्तु शास्त्र कहता है कि जब मनुष्य मनुष्यत्व की ओर बढ़ता है तब जाकर कहीं तुम त्याग की वृत्ति प्राप्त कर पाते हो। किन्तु मैं हमेशा कहता हूँ कि हम हमारे अहंकार को छोड़ दें तो सब प्रकार के दुःख का निवारण हो सकता है।

प्रिय आत्मन् ! सप्रेम जय गुरुदेव ! सिद्धमार्ग पत्रिका का चौबीसवाँ अंक प्रस्तुत है। इस अंक में महामण्डलेश्वर स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व शान्ति मन्दिर मगोद में दिय गए प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत हैं।

❋श्रीगुरुदेव❋

आशा यही रखता हूँ कि हम एक आश्रम से, एक ऐसे स्थान से जुड़े हैं जो आध्यात्मिक है, प्रयासरत है तुम्हारे उत्थान के लिए। तो हम बाह्य मनोरञ्जन के बजाए आन्तरिक मनोरञ्जन की तरफ चलें, क्योंकि बाह्य क्षणिक होता है जिसको वेदान्त मिथ्या कहता है। इच्छाएँ कभी समाप्त नहीं होती हैं परन्तु शास्त्र कहता है कि जब मनुष्य मनुष्यत्व की ओर बढ़ता है तब जाकर कहीं तुम त्याग की वृत्ति प्राप्त कर पाते हो। किन्तु मैं हमेशा कहता हूँ कि हम हमारे अहंकार को छोड़ दें तो सब प्रकार के दुःख का निवारण हो सकता है। परन्तु न चाहते हुए भी अहंकार हमें या हमसे अहंकार नहीं छोड़ा जाता क्योंकि हम किसी भी विषय या वस्तु व्यवहार को सीखते बाद में हैं पहले अहंकार करने लग जाते हैं, ये हमारी एक

अपने आप को सत्संगति, भजन, कीर्तन, ध्यान में लगाओ और नित्यप्रति जो भी कर्म करो उसे श्रीप्रभु के चरणों में अर्पण करते रहो।

समस्या है जिस पर हम किसी का ध्यान नहीं जाता क्योंकि यह स्वभाविक है, अहंकार हमारे व्यवहार में सम्मिलित हो जाता है। व्यवहार करते समय हम अपने विवेक का उपयोग तो करते हैं लेकिन स्वभाव के अनुसार या स्वबुद्धिदक्षता के अनुसार जितनी सोच उतना दायरा हो जाता है। निम्नकोटि के विचार उच्चकोटि के विचार की अपेक्षा जल्दी ही अपने आप को प्रौढ कर लेते हैं। इनसे बचने का उपाय है कि अपने आप को सत्संगति, भजन, कीर्तन, ध्यान में लगाओ और नित्यप्रति जो भी कर्म करो उसे श्रीप्रभु के चरणों में अर्पण करते रहो। कल्पना करो वह प्रभु हमारे बीच है, हमारा संरक्षण अब उसी के हाथ में है – श्रीकृष्णः शरणं मम। "विनीत वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि" अर्थात हमको प्रभु के सामने विनम्र और आडम्बर रहित आना चाहिए। आडम्बर भी दो प्रकार का होता है। बाह्य और आन्तरिक। इस पर कथा है कि एक पुत्री अपने पिता से कहती है कि मैं अब मन्दिर नहीं जाऊँगी, पिता ने पूछा क्यों ? तो वह कहती है कि मन्दिर जाती हूँ वहाँ भजन चलता है, वेदपाठ चलता है, कीर्तन इत्यादि चलता है लेकिन लोग अपने मोबाईल पर चर्चा करते हैं, कोई हाल-चाल पूछता है वगैरह-वगैरह और कुछ इतने भाव में खोए हुए होते हैं कि हमको भी लगता है कि ऐसा ही बनना चाहिए। लेकिन जैसे ही मन्दिर के बाहर निकलते हैं उनका भी सच्चा स्वरूप सामने आ जाता है। ये सब देखकर ऐसा लगा कि मन्दिर में जाना क्यों ? उन लोगों के साथ बैठो ही क्यों जो मन्दिर में होने वाले भजन कीर्तन इत्यादि में भाग ही नहीं ले रहे। ये सुनकर पिताजी भी सोच में पड़ गये कि इसको क्या बोलूँ ? क्योंकि बात तो सत्य है। पिताजी पुत्री से कहते हैं कि ये लो गिलास इसमें पानी भरकर तीन बार मन्दिर की प्रदक्षिणा करो, पानी कहीं गिरना नहीं चाहिए। पुत्री ने प्रदक्षिणा की और गिलास पिताजी को दे दिया।

हमारे यहाँ कहावत है "न जाने किस रूप में नारायण मिल जाये" तो भक्ति करो उसकी और अगर तुम्हारा सौभाग्य होगा तो एक न एक दिन नारायण किसी रूप में मिलकर दर्शन देंगे।

पिताजी कहते हैं कि मेरे पास तीन प्रश्न हैं क्या तुमने किसी को मोबाईल पर देखा? क्या किसी को तुमने बात करते हुए देखा ? क्या तुमने उस तरीके के व्यक्ति देखे जो अन्दर कुछ और बाहर कुछ ? बेटी हँसती है और कहती है कि मेरा सम्पूर्ण ध्यान तो पानी पर था कि कहीं पानी न गिर जाये और किसी पर ध्यान ही नहीं था। पिताजी कहते हैं कि जब तुम मन्दिर जाती हो तो लक्ष्य मन्दिर को बनाओ और उसी पर अपना सम्पूर्ण ध्यान रखो। दुनिया क्या कर रही है उससे तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए, तुम्हारा लक्ष्य स्पष्ट और सटीक होना चाहिए। हमें भी अपना लक्ष्य निर्धारित करके चलना चाहिए और प्रेम से जाना चाहिए। लोग कहते हैं कि हमारे शास्त्र में प्रेम की चर्चा नहीं होती है लेकिन मैं कहता हूँ कि हमारे यहाँ भक्ति की चर्चा होती है। प्रत्येक व्यक्ति के बीच में होने वाला जो प्रेम है वो दरअसल प्रेम नहीं है क्योंकि यहाँ हर वस्तु की भक्ति के साथ तुलना की गयी है, चाहे वह परमात्मा से हो, सद्गुरु से हो, पति-पत्नी से हो, पुत्र का अपनी माँ से हो, जिससे भी हो, भक्ति पूर्वक हो ऐसा मैं मानता हूँ। हमारे यहाँ कहावत है "न जाने किस रूप में नारायण मिल जाये" तो भक्ति करो उसकी और अगर तुम्हारा सौभाग्य होगा तो एक न एक दिन नारायण किसी रूप में मिलकर दर्शन देंगे। परन्तु इसके लिए हमें "परस्पर देवो भव" यह ध्येयवाक्य को लगातार स्मरण करना होगा तब जाकर कहीं तुम में समदृष्टि और समभाव आ पायेगा, नहीं तो अगर हम अपने में ही रहे तो तुलसीदास जी जैसी घटना हमारे साथ भी हो जाएगी। प्रभु हमारे सामने होंगे और हम पहचान नहीं पायेंगे "तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक करे रघुवीर"। सर्वदा स्मरण करो कि " सदा सर्वदा योग तुझा घडावा" अर्थात मेरा जो

बाबा जी एक बात कहा करते थे कि रणांगण में योद्धा की वीरता का पता चलता है और योगी का मृत्यु में पता चलता है कि उसकी मृत्यु कैसे और कहाँ हुई ?

सम्बन्ध है वो तुझसे है और तुझसे ही बना रहे और तुम्हारे साथ ही तुम्हारी भक्ति करते हुए, सत्संग करते हुए, कब ये जीवन पूरा हो जाये पता नहीं चले। बाबा जी एक बात कहा करते थे कि रणांगण में योद्धा की वीरता का पता चलता है और योगी का मृत्यु में पता चलता है कि उसकी मृत्यु कैसे और कहाँ हुई ? एक कथा आती है कि एक बार व्यास जी का एक शिष्य व्यास जी से पूछता है कि मेरी मृत्यु कैसे होगी ? व्यास जी ने कहा कि इसके लिए तो यमराज के पास जाना पड़ेगा। वे दोनों यमराज के पास जाते हैं वहाँ जाकर पूछते हैं कि ये मेरा शिष्य जानना चाहता है कि इसकी मृत्यु कैसे और कब होगी ? यमराज ने कहा कि इसके लिए मृत्युदेव से पूछना पड़ेगा। मृत्युदेव से पूछा तो मृत्युदेव ने कहा कि लेखा-जोखा तो चित्रगुप्त रखता है उसी से पूछना चाहिए। चारों चित्रगुप्त के पास जाते हैं। वहाँ उनके सामने प्रश्न रखा गया तो चित्रगुप्त ने नजर डाली और कहा कि लिखा तो ऐसा है कि बहुत अच्छा शिष्य है इसकी मृत्यु होनी ही नहीं चाहिए , किन्तु यदि गुरु, यमराज, मृत्युदेव, चित्रगुप्त एक साथ हो जाएँ तो उसकी मृत्यु सम्भव है और ये तो सम्भव ही नहीं है। परन्तु चित्रगुप्त उस समय उससे कहता है कि तुम्हारे एक प्रश्न ने ऐसी परिस्थिति ला दी है कि अब तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी क्योंकि ये सभी एक साथ हैं। इससे यही सीखने को मिलता है कि हमें बोलने से पहले, प्रश्न करने से पहले, उचित और अनुचित का विचार कर लेना चाहिए। इसलिए कहते हैं सब कुछ कर्म पर निश्चित है, हमारे कर्म ही सद्मार्ग और असद्मार्ग पर हमको ले जाते हैं। हमारे जीवन में जितनी ज्यादा संख्या सत् की होगी उतनी अच्छी हमारी गति होगी। यहीं बात आती है संस्कार की जो कि परिवार में

हम अपनी सांस्कृतिक-परम्पराओं को भूल रहे हैं और उन्हें निभाने में भी अरुचि दिखा रहे हैं, जिसके कारण हमारा सनातन धर्म पिछड़ता जा रहा है। तथापि हमें प्रयासरत रहना होगा अपनी संस्कृति और परम्पराओं को सश्रद्धा निभाने में।

रहते हुए हमारे माता-पिता देते हैं और फिर बाद में विद्यालय में गुरुजन, किन्तु दोनों के संस्कार में भिन्नता है क्योंकि माता-पिता द्वारा दिये गये संस्कार में प्रेम है, ममता है, प्यार है परन्तु गुरु के द्वारा दिये गये संस्कार में प्यार-दुलार होते हुए अनुशासन है जिसका जीवन में बहुत महत्व है। इसलिए प्राचीन काल में गुरुकुल हुआ करते थे जिसमें बालक संस्कार पाता है, अनुशासन में रहता है, परम्पराओं को जानता है। वहाँ रहकर वह विनम्रता के भाव को समझता है और अपने जीवन में उसका पालन करता है, किन्तु वर्तमान में गुरुकुल नहीं हैं बल्कि ऐसे विद्यालय हैं जिनमें संस्कार और परम्परा के बारे में कुछ पता नहीं हैं। हम अपनी सांस्कृतिक-परम्पराओं को भूल रहे हैं और उन्हें निभाने में भी अरुचि दिखा रहे हैं, जिसके कारण हमारा सनातन धर्म पिछड़ता जा रहा है। बहुत से ऐसे देश हैं जो अपनी परम्पराओं को भूल चुकें हैं और दूसरे देशों की परम्परओं को अपना रहे हैं लेकिन भारत कहीं न कहीं अभी सुरक्षित है। तथापि हमें प्रयासरत रहना होगा अपनी संस्कृति और परम्पराओं को सश्रद्धा निभाने में। कुछ लोग कहते हैं कि हम जो करते हैं हम गलत नहीं है अर्थात हम में कोई त्रुटि नहीं है, त्रुटि तो दूसरे लोगों में हैं। हम ये ही तो कर रहे हैं, एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हुए हैं, बदला लेने में लगे हुए हैं। साधु और बिच्छु की कहानी यही तो है- दोनों अपने धर्म का त्याग करने के लिए तैयार नहीं हैं। हमारे शास्त्रों में आता है कि हम ८४ लाख योनियों में जन्म लेते हैं तो मैं कहता हूँ कि अगर हम वहाँ से एक-एक भी संस्कार लाये हैं तो हमारे पास ८४ लाख संस्कार हैं। हमें पता ही नहीं है कि हमारे पास कितना है। कभी जब क्रोध में होते हैं तो स्वान

स्वाध्याय का ये तात्पर्य नहीं है कि सिर्फ पुस्तक पढ़ना, बल्कि उसका मतलब है उसका अध्ययन करना और समझकर फिर अपने आप को समझना।

जैसा अनुभव करते हैं तो कभी सिंह जैसा अनुभव होता है। ये बहुत सूक्ष्म है, हमें नहीं पता कि ये हमारे साथ हैं या हम जो भी कर्म करते हैं वह सब संस्कारवश करते हैं। अगर हमारे अच्छे संस्कार हैं तो हम अच्छा करते हैं, बुरे हों तो बुरे कर्म करते हैं। अपने विवेक का सदुपयोग करने के लिए शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय का मतलब मैं समझता हूँ कि स्वाध्याय का ये तात्पर्य नहीं है कि सिर्फ पुस्तक पढ़ना, बल्कि उसका मतलब है उसका अध्ययन करना और समझकर फिर अपने आप को समझना। किन्तु हमें लगता है कि मैं क्यों समझूँ,मुझे भगवान ने पूरा परिपक्व बनाया है। इसके लिए हमें मानसिक रूप से तैयार होना पड़ेगा क्योंकि हमारे मन में कई प्रश्न एक-साथ चलते हैं परन्तु उनका संग्रह करो जैसे तीन प्रश्न हैं कि सर्वप्रथम कहाँ जाना हैं ? दूसरा जहाँ जाना हैं वहाँ के अनुसार वेशभूषा, तीसरा है समय। अर्थात् हमें आगे करना क्या है उसके लिए हमारी पूर्व तैयारी होनी चाहिए तब कहीं जाकर हम अपने कार्यस्थल पर सही समय पर पहुँचेंगे और अपने कार्य का पूर्णरूप से सम्पादन कर पाएँगे। हमारा मन वो शक्ति है जिसका अगर हम सदुपयोग करते हैं तो यह तुम्हें बहुत ऊपर ले जायेगा। प्रातः काल में उठते वक्त अलार्म के रूप में इसका प्रयोग करो। अपने मन को जो भी तुम कार्य करने वाले हो उसके लिए उसे पहले से ही बता दो। इसे मानसिक तैयारी कहते हैं जब ये पूर्ण होगी तो कार्य में सफलता मिलेगी और दूसरा उस कार्य के लिए अनिच्छा नहीं होगी। ये बात इस पर निर्भर करती है कि सत्संग में जो भी प्रवचन में कहा

जाता है उस पर तुम कितना विचार-मनन करते हो, अर्थात् उस बात का स्वयं पर कितना प्रभाव पड़ता है, हम कितना अमल करते हैं। इन सब पर विचार पर विचार करना होगा तब कहीं जाकर हम परिणाम तक पहुँच पाएँगे अर्थात् लक्ष्य का भेदन कर सकेंगे। किन्तु हम प्रमाद कर जाते हैं। सत्संग में तो इसलिए आ जाते हैं कि हमारे दादी-दादा जी आते थे और अब माता-पिता आते हैं, क्या लेना देना सत्संग से, सत्संग की बातों से। हमें सत्संग से जाकर तो बाहर की दुनिया में जीना हैं, आधुनिक उपकरणों का उपभोग करना हैं, कहाँ ये परमात्मा, कहाँ ये सद्गुरु की बातें, ये सब मेरे लिए नहीं हैं, किसने देखा है भगवान को ? जब तक ऐसी मानसिकता रहेगी तब तक हम कुछ नहीं सीख पाएँगे और न ही कोई लाभ होगा सत्संग में आने का। इससे तो अच्छा है कि जैसे जानवर की जिन्दगी है वैसे ही जी लो, मत बनो मनुष्य क्योंकि उस के लिए तुम्हारे संस्कार ही नहीं हैं, तुम्हारा चिन्तन ही नहीं हैं। हमने नकारात्मकता के भाव को अपने मस्तिष्क में जगह दे दी है और ये नकारात्मकता तब ही जाएगी जब हम अपने सकारात्मक भाव को अधिक जगह देते हुए, सत्संग की बातों पर अमल करते हुए, अपने जीवन को मनुष्यता की ओर ले चलें। क्योंकि सत्संग ही एक ऐसा माध्यम है जिससे विचार-शुद्धि हो सकती है। अगर हम पूर्ण समर्पितभाव से सद्गुरु पर विश्वास-श्रद्धा रखते हैं और उसके साथ-साथ विनम्रता,कोमलता भी स्वभाव में हो तो आपके व्यवहार से दूसरे आकर्षित होंगे या फिर आपसे दोबारा मिलने की इच्छा करेंगे। सभी के साथ समान व्यवहार होना चाहिए तथा अहंकार तो लेशमात्र भी तुम्हारे स्वभाव में नहीं होना चाहिए। ऐसा इसलिए कि हम जिससे भी मिलें या बात करेंगे, अपना समझकर बात करेंगे। एक त्रुटि हम लोग करते हैं कि कहीं किसी

अगर हम पूर्ण समर्पितभाव से सद्गुरु पर विश्वास-श्रद्धा रखते हैं और उसके साथ-साथ विनम्रता,कोमलता भी स्वभाव में हो तो आपके व्यवहार से दूसरे आकर्षित होंगे या फिर आपसे दोबारा मिलने की इच्छा करेंगे।

संत के द्वारा ही भगवान अपना काम करते हैं अर्थात साधु उस परमशक्ति का साक्षात् माध्यम है।

सत्संग में या महापुरुष के पास जाते हैं तो वहाँ जाकर भी अपनी मस्ती में रहते हैं. जिसके लिए आये हैं उसके लिए कोई समय ही नहीं दे रहे। मैं कहता हूँ फिर क्या लाभ हुआ वहाँ जाने से ? इसलिए हम किसी बड़े या महापुरुष के साथ हों तो हमारा प्रयास होना चाहिए कि हम उन्हीं के साथ रहें, अपने में ही मगन न रहें क्योंकि किसी संत के द्वारा ही भगवान अपना काम करते हैं अर्थात साधु उस परमशक्ति का साक्षात् माध्यम है, पृथ्वी पर परमात्मा का कार्य करने के लिए उन्हीं से उनको शक्ति, बल, धैर्य प्राप्त होता है तब कहीं जाकर वो हम सब के बीच में तटस्थ रहते हैं। उन्हीं के बल से धर्म की स्थापना सम्भव है अर्थात धर्म का चिह्न है। अपनी संस्कृति से,परम्परा पर विश्वास दृढ़ है, जिससे कि आज भी भारतवर्ष में संस्कार और संस्कृत सांस ले रही है। उनका अथक प्रयास ही हमको उन्नत शिखर पर ले जाएगा किन्तु हमारा कर्त्तव्य है कि हमें बस तन, मन, और श्रद्धा से उनकी सेवा और सहयोग करना है। उनकी कही गई प्रत्येक बात शिरोधार्य करनी है। उससे आपका भी जीवन सफल एवं दूसरों के भी कष्ट दूर होंगे, सहयोग होगा।

॥ सद्गुरुनाथ महाराज की जय ॥